https://farid.ps/articles/israel_nakba_forced_labor/hi.html

भूला हुआ अध्याय: 1948 की जंग के दौरान इज़रायली शिविरों में फ़िलिस्तीनियों का क़ैद और ज़बरदस्ती मज़दूरी

1948 की अरब-इज़रायली जंग, जिसे फ़िलिस्तीनियों के लिए नकबा यानी “विनाश” के नाम से जाना जाता है, मध्य पूर्व के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ थी। इसने 7 लाख से ज़्यादा फ़िलिस्तीनियों को बेघर कर दिया और इज़रायल राज्य की स्थापना की। गाँवों से सामूहिक निष्कासन और सैन्य अभियानों के बीच एक कम चर्चित पहलू सामने आता है: हज़ारों फ़िलिस्तीनी नागरिकों को इज़रायल द्वारा संचालित क़ैद शिविरों में बंद करना। अंतरराष्ट्रीय रेड क्रॉस कमेटी (ICRC) की गोपनीयता हटाई गई रिपोर्टों और ऐतिहासिक विश्लेषणों के आधार पर यह निबंध बताता है कि किसे क़ैद किया गया, उन्हें कैसी कठोर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, उन पर थोपी गई ज़बरदस्ती मज़दूरी की प्रकृति क्या थी, और ये प्रथाएँ उस समय के स्थापित अंतरराष्ट्रीय मानवीय क़ानून का कैसे उल्लंघन थीं। इज़रायली कथानक अक्सर इन शिविरों को संभावित लड़ाकों को रोकने के लिए ज़रूरी युद्धकालीन क़दम बताते हैं, जबकि फ़िलिस्तीनी विवरणों में व्यवस्थित अत्याचार और शोषण उजागर होते हैं, जो संघर्ष की मानवीय क़ीमत को रेखांकित करते हैं।

कौन क़ैद किए गए: आग के बीच फँसे नागरिक

इन शिविरों में बंद लोग ज़्यादातर फ़िलिस्तीनी नागरिक थे, लड़ाके नहीं। इज़रायल की ज़मीन हथियाने और यहूदी जनसांख्यिक बहुमत बनाने की सैन्य मुहिमों के दौरान इन्हें पकड़ा गया। अनुमान है कि 1948 से लेकर 1955 तक कम-से-कम 22 जगहों पर (5 आधिकारिक POW/मज़दूरी शिविर और 17 तक अनौपचारिक शिविर) 5,000 से 9,000 लोगों को रखा गया। आधिकारिक शिविर जैसे हाइफ़ा के पास अत्लित, याफ़ा के उत्तर-पूर्व इजलिल, निर्जन गाँव सराफ़ंद अल-अमार के पास सराफ़ंद, तेल अवीव के पास तेल लिटविंस्की और नेतन्या के पास उम्म ख़ालिद में सैकड़ों से लेकर लगभग 3,000 तक कैदी रखे गए। अनौपचारिक शिविर पुलिस थानों, स्कूलों या गाँव के घरों में अस्थायी रूप से बनाए गए, अक्सर उन इलाक़ों में जो संयुक्त राष्ट्र विभाजन योजना के तहत अरब राज्य को दिए गए थे।

जनसांख्यिक रूप से ये ज़्यादातर 15 से 55 साल के स्वस्थ पुरुष थे, जिन्हें “लड़ने की उम्र” का लेबल लगाकर संभावित ख़तरे मान लिया गया, भले ही वे नागरिक थे। लेकिन रिकॉर्ड बताते हैं कि जाल बहुत व्यापक था: 55 से ऊपर के बुज़ुर्ग (कम-से-कम 90 दर्ज), 10-12 साल के बच्चे (15 से कम उम्र के 77), तपेदिक जैसे रोगी, और कभी-कभी महिलाएँ व बच्चे भी। आधिकारिक शिविरों में 82-85% फ़िलिस्तीनी नागरिक थे, जो नियमित अरब सैनिकों या वास्तविक युद्धबंदियों से कहीं ज़्यादा थे। जुलाई 1948 की ऑपरेशन दानी में लोद और रामला से 60-70 हज़ार फ़िलिस्तीनियों को खदेड़ा गया था; वहाँ वयस्क पुरुषों का एक-चौथाई हिस्सा क़ैद कर लिया गया। अक्तूबर 1948 के ऑपरेशन हिराम में गलिल के गाँवों अल-बीना, दैर अल-असद और तंतूरा में भी यही हुआ।

अपहरण के तरीक़े व्यवस्थित और क्रूर थे: पहले से तैयार संदिग्ध सूचियों के आधार पर पुरुषों को परिवारों से अलग किया जाता था, भीषण गर्मी में बिना पानी के मार्च कराया जाता था, या भारी पहरे में ट्रकों में ठूँसा जाता था। बिना सबूत या मुक़दमे के “तोड़फोड़ करने वाला” का आरोप लग जाता था। यह सुरक्षा, जनसांख्यिक नियंत्रण और मज़दूरी की ज़रूरत के लिए मनमानी हिरासत की नीति थी। गलिल के मूसा जैसे जीवित बचे लोगों ने बताया कि बंदूक की नोक पर चलाया गया और पकड़ते समय कई युवकों को गोली मार दी गई। 1936-39 की अरब विद्रोह में हिस्सा लेने वाले पढ़े-लिखे या राजनीतिक रूप से सक्रिय लोग विशेष निगरानी में रहते थे, हालाँकि कभी-कभी कम्युनिस्ट जैसे विचारधारात्मक जुड़ाव के कारण बाहरी दबाव से बेहतर सलूक भी मिल जाता था।

कठोर हक़ीक़त: शिविरों की स्थिति

इन शिविरों में जीवन अभाव और अत्याचार से भरा था, मानवीय मानकों से बहुत दूर। रहने की जगहें ब्रिटिश मैंडेट के पुराने ढाँचे, कँटीले तारों और निगरानी मीनारों से घिरी खेमे, या आधे ध्वस्त फ़िलिस्तीनी गाँवों की इमारतें थीं। भीड़ इतनी कि 20-

30 आदमी एक नम-गीली, टपकती खेमे या कमरे में ठूँसे जाते थे; सर्दियों में पत्तों, कार्टून या लकड़ी के टुकड़ों की अस्थायी बिछावन के नीचे पानी रिसता था। साफ़-सफ़ाई नाममात्र की: खुले शौचालय, अपर्याप्त नहाने की सुविधा, और ख़राब स्वच्छता से तपेदिक जैसी बीमारियाँ फैलीं। खाना न्यूनतम—मज़दूरों को रोज़ 400-700 ग्राम ब्रेड, ख़राब फल, घटिया मांस और कभी-कभार सब्ज़ी—जिससे कुपोषण हो गया। पानी अत्यंत सीमित था, ज़बरदस्ती मार्च और रोज़मर्रा में और तकलीफ़ बढ़ाता था।

चिकित्सा सुविधा लगभग न के बराबर; बीमार बिना इलाज पड़े रहते थे। बुज़ुर्ग और बच्चे सबसे ज़्यादा प्रभावित हुए, ठंड या अनुपचारित चोटों से कई मौतें हुईं। अत्याचार व्यवस्थित थे: पिटाई, "भागने की कोशिश" के नाम पर मनमानी गोलियाँ, और किबुत्ज़ वासियों के सामने नग्न तलाशी जैसे अपमान। जनवरी 1949 की रिपोर्ट में ICRC प्रतिनिधि एमिल मोएरी ने लिखा: "इन बेचारे लोगों को, ख़ासकर बुज़ुर्गों को देखकर दुख होता है जिन्हें बिना वजह उनके गाँवों से उठाकर शिविर में डाल दिया गया, सर्दियाँ गीली खेमों में परिवार से दूर गुज़ारने को मजबूर; जो ये हालात न झेल सके, वे मर गए।" पूर्व ब्रिटिश अफ़सरों और इर्गुन के पूर्व सदस्यों वाले गार्ड भय का राज चलाते थे; रोज़ का रूटीन तलाशी, मज़दूरी और धमकियों से भरा था।

ICRC ने शिविरों का दौरा कर उल्लंघनों को दर्ज किया, लेकिन उसका प्रभाव सिर्फ़ "नैतिक दबाव" तक सीमित था क्योंकि इज़रायल अक्सर रिहाई या सुधार की माँगों को नज़रअंदाज़ कर देता था। शुरुआती रिपोर्टों में खाने और दबाव की कड़ी आलोचना थी, 1948 के अंत तक स्वच्छता में मामूली सुधार हुआ, लेकिन नागरिक और POW की स्थिति का भ्रम बना रहा।

मज़दूरी के ज़रिए शोषण: युद्धकालीन ज़रूरतों की रीढ़

ज़बरदस्ती मज़दूरी इन शिविरों के मूल उद्देश्य थी। यहूदी लामबंदी से मज़दूरों की कमी के बीच नए राज्य की बुनियादी ढाँचे के लिए कैदियों का शोषण किया गया। काम ख़तरनाक और थका देने वाले थे, बंदूक की नोक पर रोज़ाना: युद्धक्षेत्र से लाशें, मलबा और अनएक्सप्लोडेड गोले हटाना; खाई खोदना और मोर्चे मज़बूत करना; सड़कें बनाना (जैसे नेजेव में इलात तक); पत्थर तोड़ना; सब्ज़ियाँ उगाना; सैनिकों के क्वार्टर और शौचालय साफ़ करना; ध्वस्त फ़िलिस्तीनी घरों से लूटी संपत्ति ढोना। मना करने पर पिटाई या गोली, जैसा कि जीवित बचे तौफ़ीक़ अहमद जुमआ ग़ानिम ने बताया: "जो काम से इनकार करता, उसे गोली मार दी जाती थी। कहते थे कि भागने की कोशिश की।"

काम की स्थिति शिविरों की तकलीफ़ें और बढ़ाती थी: पूरे दिन भीषण मौसम में काम, "प्रोत्साहन" के नाम पर नाममात्र का खाना। जुलाई 1948 में ICRC प्रतिनिधि जैक्स दे रेनियर ने इसे "ग़ुलामी" कहा, क्योंकि 16-55 साल के नागरिकों को सैन्य कामों के लिए बंद रखा गया—जो निषेध था। उम्म ख़ालिद के मरवान इक़ाब अल-यहिया ने बताया कि पत्थर काटते थे, सुबह एक आलू और रात में आधी सूखी मछली मिलती थी, बीच-बीच में अपमान। मज़दूरी शिविरों से बाहर मित्स्पे रेमोन जैसे स्थानों तक फैली, जो सीधे युद्ध प्रयास और राज्य-निर्माण में मदद करती थी।

इज़रायली इतिहासकार बेनी मॉरिस अपनी किताब **The Birth of the Palestinian Refugee Problem Revisited** में इन हिरासतों का ज़िक्र संक्षेप में करते हैं, कहते हैं कि लोद-रामला जैसे इलाक़ों के फ़िलिस्तीनियों को जाँच के लिए रखा गया और कृषि, घरेलू व सैन्य सहायता के लिए इस्तेमाल किया गया जब तक रिहा या निष्कासित न कर दिए गए। लेकिन वे इन्हें अराजकता के बीच अस्थायी सुरक्षा क़दम बताते हैं, व्यवस्थित शोषण को कमतर आँकते हैं।

अंतरराष्ट्रीय क़ानून का उल्लंघन: स्पष्ट अवैधता

ये प्रथाएँ उस समय के उभरते और प्रचलित अंतरराष्ट्रीय मानवीय क़ानून, ख़ासकर 1929 की जेनेवा कन्वेंशन (POW) और 1907 की हेग रेगुलेशंस का खुला उल्लंघन थीं। मनमाने अपहरण और बिना आरोप अनिश्चित काल तक हिरासत ने ज़बरन स्थानांतरण के ख़िलाफ़ सुरक्षा (बाद में जेनेवा कन्वेंशन IV, अनुच्छेद 49 में कोडिफ़ाइड) का उल्लंघन किया। ज़बरदस्ती मज़दूरी, ख़ासकर खाई खोदने या UXO हटाने जैसे सैन्य कार्य, 1929 कन्वेंशन के अनुच्छेद 31 का उल्लंघन थे, जो दुश्मन के सैन्य अभियानों में मदद या जीवन को ख़तरे में डालने वाले काम पर रोक लगाता है।

शिविरों की दयनीय खाने, स्वच्छता और चिकित्सा स्थिति ने स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए पर्याप्त राशन (1929 कन्वेंशन, अनुच्छेद 11) और मासिक चिकित्सा जाँच (अनुच्छेद 15) की आवश्यकताओं का मख़ौल उड़ाया। ICRC ने बार-बार इन उल्लंघनों का विरोध किया, लेकिन पश्चिमी शक्तियों के समर्थन से इज़रायल ने अनुपालन नहीं किया। नागरिकों को ख़तरनाक कामों में झोंकना आज रोम संविधि के तहत युद्ध अपराध माना जाएगा, जो इस संघर्ष पर आज भी क़ानूनी छाया डालता है।

विरासत और चिंतन

1948-1955 में फ़िलिस्तीनी नागरिकों की कैद नकबा का अभी भी कम अध्ययन किया गया पहलू है, जिसे सामूहिक निष्कासन ने दबा दिया। इनमें से 78% (लगभग 6,700) को युद्धविराम वार्ताओं में "बंधक" बनाकर निष्कासित कर दिया गया और वापसी से वंचित कर दिया गया; बाक़ियों को धीरे-धीरे रिहा किया गया। इस घटना ने तत्काल पीड़ा के साथ-साथ पीढ़ी-दर-पीढ़ी ट्रॉमा और शरणार्थी संकट में योगदान दिया। आज जब ऐतिहासिक जवाबदेही पर बहस जारी है, गोपनीयता हटाए गए अभिलेखों के ज़रिए इन शिविरों को स्वीकार करना संघर्ष की जड़ों की पूरी समझ को बढ़ावा देता है। इन उल्लंघनों का सामना करके समाज न्याय और अंतरराष्ट्रीय मानकों पर आधारित सुलह की दिशा में क़दम बढ़ा सकते हैं।

संदर्भ

1. अबू सित्ता, सलमान और टेरी रेम्पेल. "The ICRC and the Detention of Palestinian Civilians in Israel's 1948 POW/Labor Camps." **Journal of Palestine Studies** 43, no. 4 (2014): 11-38.
2. मॉरिस, बेनी. **The Birth of the Palestinian Refugee Problem Revisited**. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004.
3. अंतरराष्ट्रीय रेड क्रॉस कमेटी (ICRC) – 1948 संघर्षों पर गोपनीयता हटाए गए अभिलेख.
4. ज़ोखरोत. "Remembering the Prisoners of War Camps." पुस्तिका, 2024.
5. जेनेवा कन्वेंशन (1929) युद्धबंदियों के उपचार पर.
6. जेनेवा कन्वेंशन (III) 1949.
7. ICRC अभिलेख: "From our archives: protecting prisoners and detainees."
8. अल-औदा. "On Israel's little-known concentration and labor camps in 1948-1955." 19 अक्टूबर 2014.